

अंडरस्टैंडिंग चाइल्डहुड एंड एडोलसेंस

नमिता रंगानाथन द्वारा संपादित

प्रकाशक – सेज पब्लिकेशन इंडिया प्राइवेट लिमिटेड

प्रकाशन वर्ष – जून 2020

पृष्ठ संख्या – 444

मूल्य – ₹ 694.00

ऋषभ कुमार मिश्र *

बच्चों के साथ काम करने वाले पेशेवरों, जैसे—शिक्षकों, स्वयंसेवी संगठनों के कार्यकर्ताओं आदि के लिए मानव विकास के विविध मनोवैज्ञानिक आयामों की समझ आवश्यक होती है। प्रायः इसे मनोविज्ञान के ज्ञानानुशासन से संबंधित माना जाता है। वर्तमान में इस विषय क्षेत्र से संबंधित अधिकांश पुस्तकें जीवनपर्यंत मानव विकास के प्रारूप में लिखी गयी हैं। ये पुस्तकें बाल्यावस्था से आरंभ करते हुए प्रत्येक अवस्था की विशेषताओं पर प्रकाश डालती हैं। इस तरह की संदर्भ सामग्री के प्रयोग से सैद्धांतिक समझ केवल मनोविज्ञान की ज्ञान संरचना में जड़ हो जाती है। इस परिपाटी से अलग होते हुए समीक्षित पुस्तक तैयार की गई है। इसका लक्ष्य शिक्षा सहित अन्य व्यवसायों से जुड़े पेशेवरों को बाल्यावस्था और किशोरावस्था की अंतर्नुशासनात्मक समझ देते हुए व्यावहारिक और सांदर्भिक समस्याओं के समाधान की सूझ प्रदान करना है। शिक्षा से जुड़े पाठ्यक्रमों में दो तरह की पुस्तकें प्रयोग की जाती हैं। प्रथम, जो पाठ्य पुस्तक के रूप में लिखी होती हैं। इनमें किसी खास पाठ्यक्रम को लक्ष्य करते हुए अध्यायवार विषय सामग्री दी जाती है। द्वितीय, जो परिप्रेक्ष्य और शोध पर आधारित होती हैं। ये पुस्तकें पाठकों को एक खास दृष्टि से चिंतन और शोध करने के लिए तैयार करती हैं। प्रथम वर्ग की पुस्तकें पाठकों को पाठ्यचर्या की संपूर्ण सामग्री से परिचित कराती हैं और परीक्षा की तैयारी में सहयोग प्रदान करती हैं। लेकिन इनकी समस्या है कि ये विश्लेषणात्मक नज़रिए और वास्तविक परिस्थितियों में समस्या-समाधान की क्षमता का विकास करने में अधिक सफल नहीं हो पाती हैं। दूसरी तरह की पुस्तकें शोध और परिप्रेक्ष्य का विकास करती हैं लेकिन ये इतनी विशिष्ट होती हैं कि आम पाठक को प्रारंभिक स्तर पर कठिन जान पड़ती हैं। इस लेख में *अंडरस्टैंडिंग चाइल्डहुड एंड एडोलसेंस* पुस्तक की समीक्षा की गई है जिसका प्रकाशन सेज पब्लिकेशन द्वारा वर्ष 2020 में हुआ है। समीक्षित पुस्तक इन दोनों प्रकार की पुस्तकों की विशेषताओं को जोड़ती है और इनकी सीमाओं को न्यूनतम करती है।

मानव विकास का अर्थ केवल जैविक परिवर्तन नहीं है। जैविक और मात्रात्मक तरीके से मानव विकास को समझने के लिए परिपक्वता और वृद्धि जैसी अवधारणाएँ प्रयुक्त होती हैं। इसके आधार पर हम एक जीव जाति के रूप में मनुष्य के विकास को समझते हैं लेकिन सामाजिक-सांस्कृतिक संदर्भ के साथ व्यक्त अंतःक्रिया और उस अंतःक्रिया के फलस्वरूप होने वाले गुणात्मक एवं मात्रात्मक बदलावों को मानव विकास के अंतर्गत समझा जाता है। पुस्तक का आरंभ इसी स्थापना के साथ होता है। इसका उदाहरण देते हुए लेखिका ने स्पष्ट किया है कि शैशवावस्था, बाल्यावस्था और किशोरावस्था के कुछ सार्वभौमिक लक्षण होते हैं और कुछ सांदर्भिक। इन दोनों का अपना महत्व होता है। सार्वभौमिक लक्षण अंतर्जात क्षमताओं का और सांदर्भिक लक्षण संस्कृति के तत्वों का प्रतिनिधित्व करते हैं। इन दोनों के परस्पर संबंध के फलस्वरूप किसी भी बच्चे का विकास होता है। पुस्तक का अध्याय एक, 'बेसिक कान्सेप्ट्स एंड आइडियाज इन ह्यूमन डेवलपमेंट एंड डायवर्सिटी' इस तथ्य को रेखांकित करता है कि जैविक विकास की अवस्था और शिक्षा में प्रत्यक्ष की संबंध होता है। इसके आधार पर ही पाठ्यचर्या कक्षा शिक्षण और आकलन आदि का निर्धारण होता है। फिर भी, हमें विद्यार्थियों को केवल उनकी जन्मजात या अंतर्निहित क्षमताओं के संदर्भ में नहीं देखना चाहिए। ये क्षमताएँ 'चर' के समान होती हैं जो बच्चों में विभिन्नता का कारण बनती हैं। उदाहरण के लिए, अधिगम दक्षता, बुद्धि अभिवृत्ति, रुचि आदि चरों का मापन कर हम अपनी कक्षा के विद्यार्थियों को अलग-अलग वर्गों में रखते हैं। ये वर्ग श्रेणीक्रम में

भी हो सकते हैं, जैसे— बुद्धिलब्धि के आधार पर कम से अधिक के वर्ग और विशिष्ट गुणों से युक्त, जैसे— रुचि और अभिक्षमता से जुड़े समूह। जबकि सामाजिक-सांस्कृतिक विद्यार्थियों में विभेद करते हैं। उदाहरण के लिए, लड़के और लड़कियों की शिक्षा, सामान्य और दिव्यांग विद्यार्थियों की शिक्षा। यह अध्याय मानव विभिन्नता के किसी भी सार्वभौमिक और मानकीकृत मापन की सीमाओं को बताता है और बल देता है कि विद्यार्थियों को उनकी विशेषताओं के साथ स्वीकार कर उनके समग्र विकास में योगदान करना ही विद्यालय की भूमिका है। यह अध्याय पाठकों के सामने कुछ प्रश्न रखता है— क्या बाल्यावस्था और किशोरावस्था एक सार्वभौमिक अवधारणा है? क्या इन अवस्थाओं में वृद्धि और विकास की प्रमुख प्रवृत्तियाँ एकरूप होती हैं? एक विकासात्मक संदर्भ के रूप में विद्यालय कैसे बच्चों और किशोरों को प्रभावित करता है? इस दौरान स्व और अस्मिता का विकास कैसे होता है? शिक्षकों पर हमउम्र साथियों का क्या प्रभाव होता है? जेंडर की अवधारणा को मानव विकास के सापेक्ष कैसे समझें? डिजिटल संसाधनों का बच्चों और किशोरों पर क्या प्रभाव पड़ता है? आदि। आगामी अध्यायों में इन प्रश्नों के माध्यम से भारतीय संदर्भ में मानव विकास के विविध आयामों को प्रस्तुत किया गया है।

शैशवावस्था— स्वतंत्रता, सुरक्षा और सृजनात्मकता

अध्याय दो, 'डेवलपमेंट पैटर्नस इन अर्ली चाइल्डहुड' एवं अध्याय तीन, 'अर्ली चाइल्डहुड केयर एंड एजुकेशन: पॉलिसी, प्रैक्टिस एंड इनोवेशन' शैशवावस्था से संबंधित हैं। इनका उद्देश्य पूर्व

बाल्यावस्था देखभाल और शिक्षा के महत्व की व्याख्या करना है। अध्याय दो में शैशवावस्था में विकासात्मक पैटर्न की विवेचना की गई है। इसमें गर्भधारण से लेकर 2 वर्ष की अवस्था तक के विभिन्न विकासात्मक चरणों का उल्लेख है। तदुपरांत जन्म के उपरांत होने वाले शारीरिक विकास, सामाजिक विकास, सांवेगिक विकास और संज्ञानात्मक विकास का वर्णन है। इसके अंतर्गत इस बात पर बल दिया गया है कि किसी भी शिशु के प्रारंभिक दो वर्षों में केवल शारीरिक विकास ही नहीं होता बल्कि बच्चों के सामाजिक-सांवेगिक और संज्ञानात्मक विकास की नींव भी बनती है। इस विकास का दीर्घकालीन प्रभाव पड़ता है। इन विशेषताओं के आलोक में लेखिका ने पूर्व बाल्यावस्था शिक्षा संबंधित कुछ सूत्रों का उल्लेख किया है— स्वतंत्र रूप से कार्य करने का अवसर देना, सुरक्षित और पोषित परिवेश देना, अभिभावकों और शिक्षकों द्वारा सामाजिक दक्षताओं का विकास आदि। इस अवस्था में शिशुओं को खेल और कलात्मक गतिविधियों के माध्यम से अपने परिवेश को जानने का मौका देना चाहिए। जीन पियाजे और वाइगोत्स्की के सिद्धांतों का संदर्भ लेते हुए लेखिका ने व्याख्या की है कि इस अवस्था में खेल के माध्यम से शिशु अपनी दुनिया को समझता और आत्मसात करता है। इस संलग्नता से उनकी भाषा का विकास होता है और वे समस्या समाधान के लिए सांस्कृतिक उपकरणों के प्रयोग से परिचित होते हैं। कला संस्कृति और अभिनय के द्वारा वे अपनी समझ को प्रकट करते हैं। अध्याय तीन, ‘अर्ली चाइल्डहुड केयर एंड एजुकेशन: पॉलिसी, प्रैक्टिस एंड इनोवेशन’ में प्रारंभिक बाल्यावस्था देखभाल और शिक्षा से संबंधित भारत सरकार

की नीतियों का उल्लेख है। यह अध्याय रेखांकित करता है कि शिक्षा के अधिकार कानून में प्रारंभिक बाल्यावस्था शिक्षा से संबंधित अधिकार नहीं दिए गए हैं। इसके पूरक रूप में वर्ष 2013 से आरंभ हुए पूर्व बाल्यावस्था देखभाल और शिक्षा संबंधित कार्यक्रम की चर्चा की गई है। इस कार्यक्रम के उद्देश्य को शिक्षा, स्वास्थ्य एवं सुरक्षा के समेकित रूप में समझाया गया है। इस अध्याय द्वारा स्थापित किया गया है कि प्रारंभिक बाल्यावस्था देखभाल एवं शिक्षा द्वारा विद्यालय के लिए मनोसामाजिक दृष्टि से तैयार शिक्षार्थी प्राप्त होते हैं। इस अध्याय में ही मॉटेसरी और वॉल डोर्फ़ के उपागमों की भी चर्चा है। ये दोनों ही उपागम पाठक को शैशवावस्था की शिक्षा से संबंधित सैद्धांतिक समझ विकसित करने में मदद करते हैं। मारिया मॉटेसरी का उपागम ऐसे कक्षा वातावरण की बात करता है जो शिशुओं की स्वतंत्रता ज्ञानेंद्रियों के विकास और सक्रियता के द्वारा आनंद की खोज को सुनिश्चित करते हैं। वॉल डोर्फ़ का उपागम जन्म से लेकर पहले सात वर्ष तक की शिक्षा की योजना प्रस्तुत करता है जिसमें प्रत्यक्ष अनुभव, अनुकरण करने वाले खेल, भाषा विकास के लिए कहानी, कविता और लोक कथाओं का प्रयोग किया जाता है। बुनाई, संगीत, प्रकृति की यात्रा जैसी गतिविधियों का भी प्रयोग किया जाता है। इन दोनों उपागमों के कारण पाठक को इस स्तर के बच्चों से युक्त कक्षा में की जाने वाली गतिविधियों की समझ विकसित होती है।

बाल्यावस्था—अपरिपक्व व्यस्क का मॉडल पर्याप्त नहीं

अध्याय चार से सात तक में बाल्यावस्था के विविध पक्षों की चर्चा की गई है। ‘पर्सपेक्टिव ऑन चिल्ड्रन एंड चाइल्डहुड’ का आरंभ इस दृष्टिकोण के साथ

होता है कि जीवनपर्यंत विकास के मनोवैज्ञानिक ढाँचे में हम बाल्यावस्था को समय के सापेक्ष देखते हैं। इसकी प्रकृति को सार्वभौमिक मानते हैं। इसके आधार पर शिक्षा की योजना को बनाते हैं। यद्यपि यह नज़रिया हमें शिक्षा को नियोजित करने का सरल तरीका देता है लेकिन इसकी सीमा यह है कि हम बच्चे को उसके गुणात्मक विशेषताओं के स्थान पर अपरिपक्व वयस्क के रूप में देखने लगते हैं। इन सीमाओं को ध्यान में रखते हुए प्रस्तुत अध्याय सार्वभौमिक और एकरूप बाल्यावस्था की आलोचना करता है और बहुल बाल्यावस्था की अवधारणा प्रस्तुत करता है। लेखिका द्वारा विवेचित किया गया है कि सामाजिक-सांस्कृतिक संदर्भ, विशेष रूप से लालन-पालन शैली, परिवार की सांस्कृतिक गतिविधियाँ, रोज़मर्रा की अंतःक्रियाएँ गुणात्मक भिन्नता का स्रोत होती हैं। इनके प्रभाव में बच्चों के स्व और अस्मिता का विकास होता है। तदुपरांत यह अध्याय भारतीय संदर्भ में बाल्यावस्था के विभिन्न पहलुओं की चर्चा करता है। इसके अंतर्गत जेंडर, परिवार की आर्थिक व क्षेत्रीय पृष्ठभूमि, धार्मिक-सांस्कृतिक संलग्नताओं पर चर्चा की गयी है। अध्याय पाँच, 'चाइल्डहुड इन इण्डिया अ सोशियो-हिस्ट्रीकल ट्राजेक्टरी', उक्त अध्याय की पृष्ठभूमि को विस्तारित करते हुए भारतीय संदर्भ में ऐतिहासिक दृष्टि से बाल्यावस्था की चर्चा करता है। लेखिका हिंदू परंपरा के अनुसार विभिन्न संस्कारों के माध्यम से बाल्यावस्था के स्वरूप को प्रस्तुत करती है। मध्य काल में भारतीय बाल्यावस्था की चर्चा करते हुए यह अध्याय बताता है कि इस काल संलग्न अभिभावकों को आनंद प्रदान करने वाले बच्चे की छवि को प्रस्तुत किया गया है। उन्हें जीवन में आनंद का आधार बताया गया है। बच्चों को राजपरिवार

की छवियों में प्रस्तुत किया गया है। इस काल के अधिकांश वर्णन प्रभु वर्ग तक सीमित हैं। उपनिवेश काल में बाल्यावस्था की यूरोपीय दृष्टि से व्याख्या की गई। बच्चों को प्रकृति का सा शुद्ध माना गया। उन्हें नागरिक बनाने के लिए शिक्षा को माध्यम चुना गया। बाल्यावस्था में उनकी नैसर्गिक शुद्धता, उनके आनंद लेने की इच्छा को अनुशासित करते हुए नागरिक बनाने का लक्ष्य था। इसके साथ-साथ उपनिवेशवाद के प्रभाव में बच्चों को आदिम समाज के प्रतिनिधि के रूप में प्रस्तुत किया गया। स्वतंत्र भारत में बाल्यावस्था को समझने का प्रमुख आधार परिवार की बदलती प्रकृति थी। एकल परिवारों की बढ़ती संख्या, औद्योगिकरण व नगरीकरण का प्रभाव और बच्चों के विकास में स्कूलों की भूमिका ने बाल्यावस्था की एक नयी समझ प्रकट की। बाज़ार और प्रौद्योगिकी के हस्तक्षेप से बच्चे भी उपभोक्ता बन गए। शिक्षा इन्हीं उपभोक्ताओं के लिए सेवा बन गई है। अध्याय छह, 'राइट्स ऑफ़ चिल्ड्रन इन डिफ़िकल्ट सर्कमस्टेंसेज़', में कठिन परिस्थितियों में निवास कर रहे बच्चों की बाल्यावस्था की विवेचना है। इसके अंतर्गत पथवासी बच्चों, बाल श्रमिकों, वंचित परिवार के बच्चों, प्रवासी बच्चों और अनाथ बच्चों आदि की चुनौतियों की चर्चा की गई है। यह अध्याय हमारे सामने बाल्यावस्था के उस उपेक्षित स्वरूप को प्रस्तुत करता है जिसके लिए शिक्षा का अधिकार कानून ही एकमात्र विकल्प है। इस अध्याय की स्थापना है कि सामाजिक-सांस्कृतिक अपवंचन के कारण बच्चों को दोहरा बहिष्करण झेलना पड़ता है। अध्याय सात, 'पॉलिसी पर्सपेक्टिवज़ ऑन प्रोटेक्शन सविसेज़ फ़ॉर चिल्ड्रन', में बच्चों से संबंधित कानूनी प्रावधानों की चर्चा की गई है। इसमें

मुख्य रूप से बाल श्रम निरोध कानून पर बल दिया गया है। बाल विवाह निषेध, लैगिंग गतिविधियों में बच्चों की सहभागिता के निरोध कानून की भी चर्चा की गई है। यह अध्याय वर्ष 2013 की राष्ट्रीय बाल नीति का भी उल्लेख करता है जिसके अनुसार 18 वर्ष से कम उम्र के प्रत्येक व्यक्ति को राज्य के निगाह में बच्चा माना जाएगा। इस नीति में बाल्यावस्था को संपूर्ण जीवन का एक अभिन्न अंग माना गया है। बाल्यावस्था को समरूप ना देख कर उसे उसकी विशेषताओं के सापेक्ष पहचाना गया है। राज्य ने ऐसे प्रत्येक बच्चे को सुरक्षा और पोषण देने का दायित्व स्वीकार किया है जिनका नैसर्गिक विकास किसी भी कारण से बाधित हो रहा है।

किशोरावस्था— सतत अथवा असतत की बहस

इस पुस्तक में किशोरावस्था पर आधारित पाठों की अंतर्निहित मान्यता है कि यद्यपि किशोरावस्था को हम जैविक बदलाव के आधार पर पहचानते हैं लेकिन बाल्यावस्था की तरह यह भी कोई एक सार्वभौमिक अवधारणा नहीं है बल्कि सामाजिक-सांस्कृतिक संदर्भ में ही इसे समझा जा सकता है। इसके आलोक में परिवार की पृष्ठभूमि, हमउम्र साथियों के प्रभाव, मीडिया, धर्म और जाति के आधार पर किशोरावस्था की बहुलता को समझाया गया। भारतीय संदर्भ में किशोरावस्था की व्याख्या करते समय यह ध्यान रखने की आवश्यकता है कि यद्यपि किशोरावस्था जैविक दृष्टि से आरंभ होती है लेकिन इसमें होने वाले संज्ञानात्मक, सांवेगिक, सामाजिक और नैतिक विकास की दिशा को सामाजिक सांस्कृतिक कारक प्रभावित करते हैं। इस पृष्ठभूमि में अलग-अलग संस्कृतियों में हुए शोध कार्य का उदाहरण

लेते हुए इस किशोरावस्था के सतत या असतत होने की बहस को प्रस्तुत किया गया है। इरिकसन के हवाले से पाठकों को सूचित किया गया है कि प्राचीन भारतीय ग्रंथों में किशोरावस्था जैसे शब्द का उल्लेख नहीं मिलता। इन ग्रंथों में आश्रम व्यवस्था का उल्लेख है जहाँ किशोरावस्था की जैविक आयु ब्रह्मचर्य के अंतर्गत आती है। इसके आधार पर ही माना जाता है दक्षिण-पूर्वी एशिया के देशों में युवा वर्ग ही किशोरावस्था को शामिल करता है। यहाँ 'किशोर' जो कोई अलग वर्ग नहीं है। क्रमशः भारतीय संदर्भ में टी.एस. सरस्वती के कार्यों का संदर्भ लेते हुए व्याख्या की गयी है कि भारतीय समाज में किशोरावस्था नगरीकृत हो रहे समाज का परिणाम है, जहाँ उद्योग एवं प्रौद्योगिकी ने बाल्यावस्था और युवावस्था के बीच विकासात्मक संदर्भ प्रदान किया। इस विकासात्मक संदर्भ के प्रतिनिधि मध्यमवर्गीय किशोर हैं जो अभिभावकों के अधिक नियंत्रण, प्रतियोगी अकादमिक वातावरण, उच्च करियर आकांक्षा आदि की विशेषताओं को प्रकट करते हैं। उनमें स्वायत्तता के स्थान पर परिवार एवं मित्रों पर अधिक निर्भरता होती है। अध्याय आठ, 'अंडरस्टैंडिंग एडोलसेंस: थ्योरीज इश्यूज एंड डिबेट्स', में भारतीय किशोरावस्था को जेंडर और वर्ग के आधार पर समझा गया है। इन्हीं चरों के मिश्रण से निम्न वर्ग में लड़कियों की किशोरावस्था, निम्न वर्ग में लड़कों की किशोरावस्था, मध्यम वर्ग में लड़कियों की किशोरावस्था, मध्यमवर्ग में लड़कों की किशोरावस्था की विस्तार से विवेचना की गई है। किशोरावस्था से संबंधित अध्याय सुझावात्मक होने के बजाय चिंतनपरक अध्ययन सामग्री के रूप में हैं। उदाहरण के लिए, किशोरावस्था से संबंधित अध्यायों में

परंपरागत तरीके से 'तूफान और तनाव' की स्थापना करने के स्थान पर पाठकों को पिछले 50 वर्षों में किशोरावस्था के सैद्धांतिक फलक में हुए विकास से परिचित कराया गया है।

मानव विकास से जुड़े कुछ महत्वपूर्ण संप्रत्यय

इस पुस्तक में डिजिटल दुनिया, जेंडर, हम उम्र साथियों से संबंध, बुद्धि और समावेशन से संबंधित अध्याय हैं। ये अध्याय संप्रत्ययों की व्याख्या करते हुए बताते हैं कि हमारे बड़े होने के अनुभवों पर डिजिटल दुनिया, हमउम्र साथियों और जेंडर का क्या प्रभाव पड़ता है? शिक्षा जगत में बुद्धि की अवधारणा और इसके मापने के क्या निहितार्थ हैं? गुणवत्तापूर्ण शिक्षा के लिए समावेशन क्यों आवश्यक है?

डिजिटल दुनिया की वास्तविकता को स्वीकार करते हुए बच्चों और किशोरों के लिए इसे एक महत्वपूर्ण विकासात्मक संदर्भ माना गया है। इससे जुड़े अध्याय नौ, 'ग्रोइंग अप इन अ डिजिटल वर्ल्ड', में व्याख्या की गयी है कि शिक्षा के क्षेत्र में इसे हम कक्षा शिक्षण में प्रयुक्त सामग्री और संसाधनों के रूप में देखते हैं जबकि डिजिटल दुनिया आभासी पहचानों को पैदा कर रही है। इस आभासी जगत में स्वीकृति और अस्वीकृति मानसिक स्वास्थ्य को प्रभावित करती है। यह अध्याय बताता है कि आभासी दुनिया बच्चों को उम्र से पहले वयस्क बनाने में योगदान कर रही है। यह सामाजिक पूर्वग्रहों और रूढ़ियों को पुनर्बलित कर रही है।

मानव विकास के संदर्भ में हमउम्र साथियों की भूमिका महत्वपूर्ण होती है। इस पुस्तक के अध्याय 10, 'पिअर रिलेशनशिप इन चाइल्ड एंड एडोलसेंस', में बाल्यावस्था और किशोरावस्था में हमउम्र

साथियों के प्रभाव की विवेचना की गई है। इसके लिए गेसेल, सुलविन और सेलमैन के सिद्धांतों को ध्यान रखा गया है। इस अध्याय में बताया गया है कि उम्र के साथ बच्चों का मित्रता संबंध घनिष्ठता और परिपक्वता की ओर बढ़ता है। बच्चों के हमउम्र साथी परिवार से बाहर की दुनिया होती है जहाँ बच्चे अपने आत्म विकास में मित्रों की स्वीकृति उनकी अंतःक्रियाओं को आधार बनाते हैं। बच्चों व किशोरों के मित्र सामाजिक अधिगम का आधार होते हैं। वे जीवन कौशल का विकास करते हैं। सकारात्मक आत्मसंप्रत्यय को पोषित करने में योगदान करते हैं।

जेंडर संबंधित अध्याय 'अंडरस्टैंडिंग जेंडर कान्सेप्स एंड आडियाज़' में जेंडर को एक प्रमुख विकासात्मक कारक माना गया है। इसके अंतर्गत जेंडर-भेद के साथ-साथ जेंडर अस्मिताओं की विवेचना है। इस पुस्तक में जेंडर को केवल लड़के और लड़कियों के वर्ग में नहीं समझा गया है बल्कि इसने ट्रांसजेंडर के संदर्भ को भी स्थान दिया गया है। यह अध्याय बताता है पुरुषत्व का बोध भी जेंडर रुढ़ि का एक उदाहरण है जो लड़कों पर एक मानसिक दबाव डालता है। जेंडर पूर्वग्रह को शारीरिक संरचना, सामाजिक भूमिकाओं और अंतःक्रियाओं में सामाजिक अपेक्षाओं में देख सकते हैं। यह अध्याय विशेष रूप से सचेत करता है कि शिक्षा के क्षेत्र में जेंडर भेद और पूर्वग्रहों के कारण लड़कियों और ट्रांसजेंडर के बहिष्करण की संभावना अधिक होती है।

अगला अध्याय 'अंडरस्टैंडिंग डायवर्सिटी एंड इन्क्लूजन', विविधता और समावेशन पर आधारित है। इस अध्याय के आरंभ में ही संज्ञानात्मक कारकों

जैसे अधिगम शैली और उपलब्धि के आधार पर विविधता, सामाजिक-सांस्कृतिक कारकों, जैसे—भाषा, धर्म और क्षेत्र के आधार पर विविधता, दिव्यांगता के आधार पर विविधता की चर्चा की गई है। इस अध्याय का झुकाव दिव्यांग बच्चों की विविधता के संदर्भ में समावेशन की अवधारणा पर है। अध्याय में बल दिया गया है कि किसी भी दिव्यांगता के लिए धार्मिक कारण नहीं स्वीकार करना चाहिए न ही यांत्रिक बाधाओं के कारण दिव्यांगों को अक्षम घोषित करना चाहिए। ये दोनों तरह की स्वीकृतियाँ दिव्यांगों के स्वस्थ एवं समग्र विकास को बाधित करती हैं। उन्हें मुख्यधारा से बाहर ढकेलती हैं। शिक्षा क्षेत्र में कार्य करने वाले पेशेवरों को ध्यान रखने की आवश्यकता है कि यह दिव्यांगता भी एक प्रकार की विविधता है जिसे शिक्षा में सम्मिलित करने की आवश्यकता है। इसी पृष्ठभूमि में यह अध्याय समावेशी विद्यालय, समावेशी शिक्षा और विशिष्ट विद्यार्थियों की शिक्षा की बहस को भी संबोधित करता है। अध्याय यह भी बताता है कि समावेशी शिक्षा उन्हें अन्य बच्चों के समान शिक्षा का वातावरण उपलब्ध कराती हैं जहाँ वे अपने हीनता बोध से मुक्त होकर सबके साथ सीखते हैं। समावेशी विद्यालय ही दिव्यांग विद्यार्थियों को मुख्यधारा के समाज के लिए तैयार करते हैं।

बुद्धि की परिभाषा और बुद्धि का मापन शिक्षा के क्षेत्र में एक महत्वपूर्ण संकल्पना है। इस पुस्तक में एक पूरा अध्याय इस विषय को दिया गया है। यह अध्याय अलफ्रेड बिनेट से लेकर हॉवर्ड गार्डनर तक के सिद्धांतों की संक्षिप्त रूपरेखा को प्रस्तुत करता है। इस प्रस्तुति के दौरान प्रत्येक खंड

में शैक्षिक निहितार्थों का भी उल्लेख किया गया है। इस अध्याय में सांवेगिक बुद्धि पर भी पर्याप्त सामग्री दी गयी है। इस तथ्य को रेखांकित किया गया है कि केवल संज्ञानात्मक समस्याओं और उनसे अनुकूलन ही बुद्धि नहीं है बल्कि अपने संवेगों को जानना, उनका नियमन और नियंत्रण भी एक स्वस्थ व्यक्ति के लिए आवश्यक है। संज्ञानात्मक और सांवेगिक पक्षों को शामिल करते हुए बुद्धि से संबंधित तीन आयामों का उल्लेख है— पहला, तटस्थ बुद्धि, जो मुख्यतः तंत्रिका तंत्र से संबंधित प्रभावशीलता होती है। आनुभविक बुद्धि, जो संग्रहित ज्ञान, अधिगम और अनुभवों का परिणाम होती है, क्षेत्र विशेष में सीखी गई विशेषज्ञता को प्रस्तुत करती है। मननशील बुद्धि नई परिस्थितियों में चिंतन करने, समस्या के समाधान करने और आत्म नियमन से संबंधित है।

स्व एवं अस्मिताबोध— संदर्भ, शोध एवं भावी प्रश्न

अध्याय 15, 'डेमीसिटीफाइंग द नेशंस ऑफ़ सेल्फ़ एंड आइडेंटिटी', में स्व एवं अस्मिता से संबंधित समसामयिक परिप्रेक्ष्यों का विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है। इस अध्याय में बल दिया गया है कि शैशवावस्था में ही विद्यार्थी में स्वबोध विकसित होता है जबकि अस्मिता विकास की दृष्टि से किशोरावस्था की भूमिका महत्वपूर्ण है। इस आधारभूत मान्यता के सापेक्ष स्व और अस्मिता के मनोविश्लेषणात्मक और मानवतावादी उपागमों की व्याख्या की गई है। मैस्लो, इरिकसन आदि के सिद्धांतों का संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत किया गया है। इस सैद्धांतिक परिपक्वता के बाद प्रस्तुत अध्याय

विद्यालय और अस्मिता विकास के विभिन्न आयामों को प्रकाशित करता है। इस अध्याय के अनुसार हमें स्व और अस्मिता को निरपेक्ष दृष्टि से समझने के स्थान पर सामाजिक अंतःक्रियाओं और परिवेश में घटित हो रही वृहद् व सूक्ष्म प्रक्रियाओं के संदर्भ में समझना चाहिए। हमें यह ध्यान रखना होगा कि वर्तमान समय में किसी एक अस्मिता के स्थान पर हम अस्मिताओं को विकसित करते हैं। अस्मिता की प्रक्रिया को परिवार तक सीमित रखने के बजाय परिवेश में हो रहे बदलावों-सांस्कृतिक बहुलता, डिजिटल परिवेश, विद्यालयों के बदलते स्वरूप आदि के सापेक्ष समझने की आवश्यकता है।

पुस्तक के अंतिम अध्याय, 'रिसर्चींग चिल्ड्रन एंड एडोलसेंटस: अप्रोच एंड स्ट्राजीज' में बच्चों और किशोरों के साथ शोध हेतु विधियों और उपकरणों का वर्णन किया गया है। इसके अंतर्गत नैसर्गिक परिस्थितियों में किए जाने वाले शोध कार्यों और प्रयोगात्मक दशा में किए जाने वाले शोध कार्यों की विशेषताओं की व्याख्या की गयी है। यह अध्याय शिक्षा के क्षेत्र में वर्तमान शोध प्रवृत्तियों को ध्यान में रखते हुए बताता है कि बच्चों और किशोरों के साथ शोध करते हुए उन्हें सक्रियकर्ता के रूप में देखा जाना चाहिए। जब हम कक्षा शिक्षण के संदर्भ में शोध करते हैं तो प्रयोगात्मक विधियाँ अधिक सहयोगी होती हैं। इनके आधार पर हम शिक्षण के अलग-अलग प्रतिमानों की प्रभावशीलता का अध्ययन कर सकते हैं लेकिन जब हम विकासात्मक संदर्भ पर आधारित कार्य करते हैं तो वृत्त अध्ययन, मानवशास्त्रीय शोध विधियों का प्रयोग करना चाहिए। इन विधियों द्वारा वास्तविक परिस्थितियों में घटित हो रहे व्यवहारों

का अवलोकन एवं निर्वचन किया जा सकता है। यह अध्याय शिक्षकों के लिए उपयोगी क्रियात्मक शोध विधि पर भी प्रकाश डालता है। इसके साथ विधिवत व्याख्या करता है कि शिक्षण विधियों एवं नवाचारों के मूल्यांकन से संबंधित अध्ययन में इस विधि का प्रयोग किया जा सकता है। यह अध्याय बच्चों के साथ किए जाने वाले शोध कार्य के नैतिक आयामों को भी प्रस्तुत करता है और बताता है कि बच्चों को अपरिपक्व मानकर उनके साथ बिना सहमति के आँकड़े एकत्रित नहीं करने चाहिए। यदि बच्चों के साथ शोध कार्य किया जा रहा है तो उनके अभिभावकों की सहमति लेना आवश्यक है। यदि बच्चा विद्यालय जा रहा है तो विद्यालय और अभिभावक दोनों की सहमति आवश्यक है। इस तरह से यह अध्याय बाल्यावस्था और किशोरावस्था की विशेषताओं के आधार शोध विधियों और उपकरणों की प्रस्तुति करता है। यह अध्याय पाठकों के लिए पूरक अध्याय के रूप में है। वे पहले अध्याय से पंद्रहवें अध्याय तक जिन प्रश्नों से परिचित होते हैं और यदि वे उन प्रश्नों का उत्तर स्वयं खोजना चाह रहे हैं तो उसके लिए विधि क्या होगी? इससे वे परिचित होते हैं।

पुस्तक के अंत में अद्यतन सैद्धांतिक संदर्भों को संबोधित करने वाले दो निबंध दिए गए हैं। यह निबंध उन पाठकों के लिए वैचारिक उद्दीपक हैं जो अकादमिक विमर्श को दार्शनिक नज़रिए से समझना चाहते हैं। इन निबंधों में शिक्षा को विधेयात्मक प्रक्रिया मानते हुए मानव विकास, खासकर बाल्यावस्था से संबंधित कुछ मुद्दों को उठाया गया है। ये दोनों निबंध बताते हैं कि बच्चे और बाल्यावस्था दोनों ही वयस्कों द्वारा किए गए संप्रत्ययकरण हैं।

सामाजिक विज्ञानों के अंतर्गत बाल्यावस्था और बच्चों से संबंधित अध्ययन अपेक्षाकृत एक नया विमर्श हैं। इस विमर्श को जब हम सामाजिक ऐतिहासिक दृष्टि से समझते हैं तो वयस्क और बच्चे के विभाजन का मुख्य आधार उनकी उम्र बनती है। इस उम्र के दायरे को भी हम परिपक्वता के नज़रिए से ही देखते हैं जबकि हमें जीवंत अनुभवों के कारण बहुलता पर भी विचार करना चाहिए। हमें इस विषय को भी संज्ञान में लेना चाहिए कि बच्चे खुद को कैसे देखते हैं? उनकी व्याख्याएँ ही बचपन की बहुलता को समझने में मददगार होंगी।

निष्कर्ष

यह पुस्तक अध्यापक शिक्षा, बाल विकास, शिक्षा मनोविज्ञान जैसे पाठ्यक्रमों से संबंधित सामग्रियों से युक्त है। इसमें बाल्यावस्था, किशोरावस्था, विशिष्ट विद्यार्थियों की शिक्षा, अस्मिता विकास, जेंडर और बुद्धि जैसे विषयों से जुड़ी सामग्री है। परंपरागत पाठ्यपुस्तकों की तरह यह पुस्तक केवल तथ्यात्मक जानकारी के साथ परीक्षा की तैयारी के लिए नहीं लिखी गई है बल्कि विषय से संबंधित समकालीन विमर्श से परिचित कराते हुए पाठक की मननशीलता

को संवर्धित करती है। इसमें कक्षागत परिस्थितियों और शिक्षण के अलावा ग्रामीण परिवेश, नगरीय परिवेश और वर्चुअल दुनिया में उभरती समस्याओं का उल्लेख है। इसी कारण प्रस्तुत पुस्तक न केवल विद्यार्थियों के लिए बल्कि क्षेत्र में कार्य करने वाले अभ्यासकर्ताओं के लिए भी महत्वपूर्ण हो जाती है। संपादक द्वारा सूझबूझ के साथ शैशवावस्था, बाल्यावस्था और किशोरावस्था के सिद्धांत, नीति और अभ्यास का संयोजन किया गया है। सैद्धांतिक प्रस्थान के रूप में यह पुस्तक वृद्धि एवं विकास के साथ-साथ विविधता के संदर्भ को भी प्रस्तुत करती है। सार्वभौमिक और सांदर्भिक बहसों को एकीकृत ढंग से समझने में योगदान करता है। इसके बिना आप 21वीं सदी में बाल विकास और शिक्षा की प्रक्रिया को नहीं समझ सकते हैं। कुल मिलाकर यह पुस्तक भारतीय संदर्भ में बाल्यावस्था और किशोरावस्था से जुड़ी सैद्धांतिक बहसों को अंतर्नुशासनात्मक ढंग से सरल भाषा में प्रस्तुत करती है। यह पुस्तक पाठकों के लिए ऐसे वैचारिक उद्दीपक की भूमिका निभा सकती है जो उनकी जिज्ञासाओं को तयशुदा उत्तर से शांत करने के स्थान पर स्वयं उत्तर खोजने की दृष्टि देती है।